National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040; Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 2; Issue 2; May 2017; Page No. 177-180

प्रसाद युगीन नाटकों में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

डॉ० दर्शन पाण्डेय

सहायक प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, शिवाजी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रस्तावना

'संस्कृति' शब्द 'सम्' उपसर्ग के साथ संस्कृत की 'ड' धातु से बनता है, जिसका मूल अर्थ साफ या परिष्कृत करना है, आज की हिंदी में यह अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' का पर्याय माना जाता है।[1] लेकिन भारतीय चिंतन-मनन परंपरा में संस्कृति को बड़े ही व्यापक अर्थ में ग्रहण किया गया है। भारतीय संस्कृति वह धारा है जो अनंत काल से बहती चली आ रही है, जिसमें आर्य, हूण, यूनानी, जैसी अनेकों संस्कृतियों के झरने आकर मिलते रहे, लेकिन भारतीय संस्कृति की मूल धारा स्वयं को प्रभावित किये बिना उन सभी को अपने में समाकर आगे बढ़ती रही। भारतीय संस्कृति और परंपरा में अनेक धर्म और संस्कृतियाँ समाहित हैं, किन्तु उसने अपनी चिरंतनता को खोने नहीं दिया। इसका सबसे बड़ा कारण उसकी समन्वयकारी शक्ति रही। भारतीय संस्कृति ने अनेक धर्मों और संस्कृतियों के मूल को ग्रहण कर स्वयं में इस प्रकार रचा बसा लिया कि वह उससे भिन्न प्रतीत ना होकर उसी के तत्व जान पड़ते हैं, वास्तव में जिन्हें उससे अलग नहीं किया जा सकता। संस्कृति के मूल में हमारा धर्म, हमारे आचार, विचार, रहन-सहन, खान-पान, शिक्षा-दीक्षा आदि सभी को समाहित किया जा सकता है। 'संस्कृति' शब्द के साथ जब 'राष्ट्र' शब्द जुड़ता है तो और अधिक महत्वशाली हो जाता है, जबकि देखा जाए तो हमारा राष्ट्रवाद सांस्कृतिक चेतना से ही जुड़ा हुआ है। अपनी जन्मभूमि से प्रेम, अपनी परंपराओं के प्रति आदर, जातीय विकास को बढ़ावा देना ये सभी बातें संस्कृति से जुड़ी हुई हैं, लेकिन सभी बातें 'राष्ट्र' या 'राष्ट्रवाद' के दायरे में ही आती हैं।

प्राचीन काल से ही भारत राजनीतिक रूप से विभिन्न राज्यों में विभक्त होने के बावजूद सांस्कृतिक दृष्टि से एक राष्ट्र के रूप में ही जाना जाता रहा है। वर्तमान संदर्भों में देखें तो विविध भाषा-भाषी, संप्रदाय, धर्म, खान-पान, उपासना पद्धति, जीवन शैली, आचार–विचार होने के बावजूद भी भारत में 'एक राष्ट्र' की अवधारणा क्षीण नहीं हुई है। वास्तव में समस्त भारत सांस्कृतिक दृष्टि से एकरूप होने के कारण ही 'एक राष्ट्र' माना जाता है। भारत की एकता और अखंडता का मूल 'सांस्कृतिक एकता' है। इसलिए भारतीय राष्ट्रवाद को 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' कहना अधिक युक्तिसंगत है।

'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' को जब हम प्रसाद युगीन हिंदी नाट्य साहित्य के संदर्भ में देखते हैं तो पाते हैं कि प्रसाद युग के लगभग सभी नाटककारों ने अपने देश अपनी संस्कृति की सराहना की है। उसे इस रूप में प्रस्तुत किया है कि जनमानस आत्म-गौरव से अभिभूत होता है। प्रसाद युगीन नाटककारों ने भारत के इतिहास और उसके अतीत के स्वर्णिम पन्नों को अपने नाटकों का कथ्य चुना है। वस्तुतः इतिहास और अतीत का मानव के जीवन में विशेष स्थान होता है, एक तो हम अपने अतीत से परिचित हो पाते हैं साथ ही अतीत की भूलों से वर्तमान और भविष्य को निर्देशित भी कर पाते हैं।

जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों में अतीत और इतिहास के स्वर्णिम विषयों और चरित्रों को उकेरा है। प्रसाद के नाटक जनमेजय का नागयज्ञ, अजातशत्रु, चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि इस कोटि की रचनाएँ हैं। प्रसाद ने इन नाटकों में अतीत का गौरव-गान, भारतीय संस्कृति, राष्ट्रीय-चेतना आदि भावों को प्रस्तुत किया है, साथ ही भारतीय संस्कृति के मूल्यों को भी अंकित किया है।'जनमेजय का नागयज्ञ' नाटक में श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवादों में हमें सत्य और मानवता की झलक दिखाई देती है, जो भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र है -"उस चेतन के अस्तित्व की सत्ता कहीं नहीं जाती। वही एक अद्वैत है यह पूर्ण सत्य है की जड़ के रूप में चेतन प्रकाशित होता है अखिल विश्व में एक संपूर्ण सत्य है। असत्य का भ्रम दूर करना होगा, मानवता की घोषणा करनी होगी।"[2] प्रसाद जी ने 'अजातशत्रु' नाटक द्वारा स्वाधीनता एवं राष्ट्र-कल्याण के लिए प्रत्येक भारतवासी को अपने प्राणों की आहुति देने का आह्वान किया है-" राष्ट्र के कल्याण के लिए प्राण टक विसर्जन किया जा सकता है और हम सब ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं।"[3] वहीं 'चंद्रगुप्त' नाटक में उन्होंने स्वतन्त्रता को ही भारतीयों का कर्म-क्षेत्र कहा है।

चन्द्रगुप्त का कथन है-" यह जागरण का अवसर है। जागरण का अर्थ है कर्म-क्षेत्र में अवतीर्ण होना और कर्म क्षेत्र क्या है? जीवन-संग्राम। इस जीवन के संग्राम में ही भारतीय स्वतन्त्रता की झलक छिपी हुई है। नाटक की पात्र अलका देश के वीरों को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए उद्‌बोधित करती हुई कहती है-

"हिमाद्रि तुंग श्रृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला, स्वतंत्रता पुकारती॥
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ प्रतिज्ञ सोच लो।
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो बढ़े चलो॥
असंख्य कीर्ति रश्मियाँ, विकीर्ण दिव्य दाहसी।-
सपूत मातृभूमि के, रुको न शूर साहसी॥
अराति सैन्य सिन्धु में, सुबाड़वाग्नि से जलो।
प्रवीर हो जयी बनो, बढ़े चलो बढ़े चलो॥" [4] इस उद्‌बोधन गीत का तत्कालीन युग इतना ज़बरदस्त प्रभाव पड़ा था कि इसे सुनकर भारत का असंख्य युवक-युवतियाँ स्वतन्त्रता आंदोलन में कूद पड़े।

हरिकृष्ण प्रेमी कृत नाटक 'शिवा-साधना' में शिवाजी की माता का चरित्र भी बखूबी उकेरा गया है, जो समय-समय पर शिवाजी को देश की स्वाधीनता और आत्म-गौरव के लिए उन्हें प्रेरित करती हैं। जिससे यह भी ज्ञात होता है प्रसाद युगीन समाज में जन-जन के हृदय में राष्ट्रीयता की भावना बहुत बलवती थी। नाटक का एक संवाद अवलोकनीय है जिसमें शिवाजी की माता जीजाबाई वीर शिवाजी को स्वतन्त्रता के लिए उद्‌बोधित करती हैं- " उठो बेटा! मैं पिता, पति, बंधु-बांधव, सुख स्वार्थ कुछ नाही जानती, मैं केवल देश जानती हूँ और तुम्हें मैं आदेश करती हूँ कि देश की स्वाधीनता ही तुम्हारे जीवन की चरम साधना हो।" [5] वास्तव में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए आत्म-बलिदान करना पड़ता है। इस नाटक के माध्यम से प्रेमी जी ने भारतीय जन-मानस की स्वाधीन चेतना को जागृत कर उन्हें राष्ट्र और संस्कृति की रक्षा के लिए स्वतन्त्रता आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने के लिए प्रेरित किया है। स्वतन्त्रता तभी हासिल की जा सकती है जब सभी भारतवासी एकजुट होकर स्वतन्त्रता के लिए तत्पर होंगे। राष्ट्र की स्वाधीनता और स्वतन्त्रता बड़ी अमूल्य वस्तु है। जो संसार के किसी भी ऐश्वर्य से बढ़कर है। वास्तव में ऐसा भाव होना ही राष्ट्रवाद का आधार है।

श्री बदरीनाथ भट्ट ने भी 'वेन चरित्र' नाटक में भारतीय संस्कृति के मूल तत्व 'सत्य' को भी प्रतिपादित किया है-" जहाँ राजा प्रजा में अनबन होती है वहाँ गहरी उथल-पुथल होती है, नाश होता है और पुनर्जन्म होता है। इस उथल पुथल में जीत उसी की होती है, जिसकी तरफ सत्य हो।"[6] सत्य की अभिव्यक्ति के साथ प्रसाद युगीन नाटकों में सर्व-धर्म समन्वय और मानवतावाद के भी दर्शन होते हैं- प्रसाद ने 'अजातशत्रु 'नाटक में भारतीय संस्कृति की समन्वयात्मक दृष्टि को प्रस्तुत किया है -"असंख्य दुखी जीवों को हमारी सेवा की आवश्यकता है। इस दुःख समुद्र में कूद पड़ो। यदि एक भी रोते हुए हृदय को तुमने हँसा दिया तो सहस्रों स्वर्ग तुम्हारे अंतर में विकसित होंगे।"[7] 'सज्जन' नाटक में मानवता की भावना पर बल दिया है।' जन्मेजय का नागयज्ञ' नाटक में ईश्वर से यह प्रार्थना की गई है कि वे अपनी करुणा और दया से पूरे विश्व को भर दे-" नाथ स्नेह की लता सींच दो, शान्ति जलद वर्षा कर दो। हिंसा धूल उड़ रही मोहन, सूखी क्यारी को भर दो। समता की घोषणा विश्व में, मन्द्र मेघ गर्जन कर दो। हरी-भरी हो सृष्टि तुम्हारी, करुणा का कटाक्ष कर दो।"[8] डॉ० राम कुमार वर्मा के नाटकों में मानवीय चेतना को वरीयता दी गई है। वर्मा जी के 'जय यात्रा' नाटक में यह भाव बड़ा ही मार्मिक बन पडा है। नाटक के प्रसंगानुसार सिद्धार्थ अपने पुत्र वर्धमान का विवाह कराना चाहता है, लेकिन वर्धमान जन-कल्याण के लिए विवाह नहीं करना चाहता। इसी प्रकार 'अनुशासन पर्व' नाटक में रामकुमार वर्मा जी ने विश्व बंधुत्व की भावना एवं मानवीय चेतना की उदात्तता को चित्रित किया है। 'शिवाजी' नामक नाटक में नाटककार ने मानवीय चेतना के स्वर अनुप्राणित किए हैं-' शिवाजी के सेनापति मुसलमान सरदार की पत्नी को बंदी बना लेते हैं। इस कार्य को सेनापति की बहन काशीबाई अनुचित ठहराती है वह सरदार की पत्नी गौहर से कहती है- काशी चाहे तुम शत्रु पक्ष की ही क्यों न हो, किन्तु जातीय सहानुभूति तो मेरे हृदय से नहीं जा सकती। तुम्हारे आँसू मुझे दुःख पहुंचाते हैं।[9] प्रस्तुत नाटक वीर शिवाजी की चारित्रिक विशेषताओं को प्रस्तुत कर समाज के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करता है यथा "इस नाटक के द्वारा हम अपने गौरव को एक बार फिर आंखों के सामने लाना चाहते हैं महाराज शिवाजी के चरित्र में हमें अपने आदर्शों को समझने की क्षमता प्राप्त होती है, उनका चरित्र हमारे अनुकरण की वस्तु है। जिन विषम परिस्थितियों में उठकर वीर शिवाजी ने अपने बाहुबल से एक स्वतंत्र राष्ट्र का निर्माण किया था, वैसी ही विषम परिस्थितियाँ जीवन में किसी न किसी रूप में हमारे नवयुवकों के सामने है।"[10] विश्व बंधुत्व की भावना या कहें मानवतावाद की छटा डॉ० रामकुमार वर्मा के 'महाराणा प्रताप' नाटक में भी दिखाई पड़ती है।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के विकास में प्रसाद युगीन लगभग प्रत्येक नाटककार ने हिस्सा लिया, जिसमें हरिकृष्ण प्रेमी का नाम भी उल्लेखनीय है। प्रेमी जी ने अपने नाटक 'शिवा साधना' में शिवाजी के माध्यम से अपनी राष्ट्रीय भावना को चित्रित किया है, नाटक में शिवाजी का यह कथन-"मेरे शेष जीवन की एकमात्र साधना होगी भारतवर्ष को स्वतंत्र कराना, दरिद्रता की जड़ खोदना, ऊंच-नीच की भावना और धार्मिक तथा सामाजिक दोनों प्रकार की क्रान्ति करना"[11] नाटककार जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद ने भी अपने नाटक ' प्रताप प्रतिज्ञा' के नायक महाराणा प्रताप द्वारा युवा-वर्ग के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत किया है। जो अपनी जन्मभूमि के लिए अपने प्राणों तक का बलिदान करने को तत्पर थे, साथ ही वह उन धनाढ्य राजाओं को भी युद्ध क्षेत्र में लाना चाहते थे जो केवल धन देकर युद्ध से छूट जाना चाहते थे, परंतु मातृभूमि की रक्षा में कुछ नहीं करना चाहते थे। नाटककार ने ऐसे धनी वर्ग पर उदार चरित्र भामाशाह के माध्यम से व्यंग्य किया है- "तुमसे बढ़कर वीर कौन होगा भामाशाह! इस बुढ़ापे में भी तुम्हारा उत्साह देखकर- स्वाधीनता की इतनी प्रबल प्यास देखकर हजारों नवयुवकों के मस्तक झुक जाएँगे। स्वागत है वीर, मातृभूमि के स्वाधीनता यज्ञ में तुम्हारी सर्व स्वाहृति का हृदय से स्वागत है।"[12] इस संवाद के प्रभाव से अनेकों धनी भारतीयों ने धन-बल से तथा स्वयं सक्रिय रूप से स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेकर अपनी प्रतिज्ञा दर्ज कराई थी। इसी प्रकार प्रताप का यह संवाद तो राष्ट्र और देश-प्रेम की अनोखी मिसाल प्रस्तुत करता है, "मैं चाहता हूँ कि इस पीड़ित भारत वसुंधरा पर कोई ऐसा माई का लाल पैदा हो, जिसके हृदय रक्त की अंतिम बूंदें इसके स्वाधीनता यज्ञ में पूर्णाहृति दे, इसे सदा के लिए स्वाधीन कर दे। जिसके इंगित पर बरसों के बिछड़े हुए कोटि-कोटि भारतीय एकसूत्र में बंधकर सर्वस्व बलिदान करने मातृ-मंदिर की ओर दौड़ पड़ें।"[13] इसी प्रकार उदय शंकर भट्ट के नाटक 'विक्रमादित्य' और 'सगर विजय' में भी संस्कृति एवं राष्ट्र की रक्षा के लिए स्वतन्त्रता की रक्षा को आवश्यक बताया गया है। क्योंकि व्यक्ति, समाज और राष्ट्र में राष्ट्र ही सर्वोपरि है, जिसके लिए सर्वस्व समर्पित करना प्रत्येक देशवासी का पहला कर्तव्य है- "जीवन एक संग्राम है। कर्तव्य की जागरूकता उस संग्राम की महत्ता है। व्यक्ति से समाज, समाज से राष्ट्र ऊंचा है। उस राष्ट्र के आगे व्यक्ति का, जाति का, नगर का और प्रांत का कोई मूल्य नहीं है...।"[14]

हरिकृष्ण प्रेमी के 'रक्षाबंधन' नाटक में देशप्रेम, मानवता और सांप्रदायिक एकता के दर्शन होते हैं। जिसमें मानवीय रिश्तों को धार्मिक संकीर्णता से ऊपर उठकर देखने की बात कही गई है। हुमायूँ का यह कथन इस बात का प्रमाण है, "अब सोचने का वक्त नहीं है। बहन का रिश्ता दुनिया के सारे सुखों दौलतों, ताकतों और सल्तनतों से बढ़कर है मैं इस रिश्ते की इज्जत रखूंगा। सल्तनत जाय, पर मैं दुनिया को यह कहते नहीं सुनना चाहता कि मुसलमान बहन की इज्ज़त करना नहीं जानते। तख़्त से उतरकर अगर किसी सच्ची बहन के दिल में जगह पा सकूँ तो अपने आप को दुनिया का सबसे बड़ा खुशकिस्मत इंसान समझूंगा।"[15] वहीं दूसरी और रानी कर्मवती का संवाद भी उल्लेखनीय है क्योंकि मानवीय प्रेम के बीच में धर्म एवं मज़हब रूपी दीवार नहीं आ सकती।"हुमायुं! तुम मुसलमान हो तो क्या हुआ! क्या तुम मनुष्य नहीं हो? भाई-बहन का संबंध धार्मिक संकीर्णता से बहुत ऊंचा होता है। वह इस मर्त्य जगत का सुंदरतम पदार्थ है।"[16] इसी प्रकार की जातीय और धार्मिक एकता की बात प्रसाद के नाटक 'चन्द्रगुप्त' में भी मिलती है। क्योंकि जब तक हम धर्म और जाति के आधार पर बंटे रहेंगे तब तक राष्ट्र की प्राप्ति नहीं हो सकती है,"तुम मालव हो और यह मागध यही तुम्हारे मान का अवसान है न? परंतु आत्म सम्मान इतने से ही संतुष्ट नहीं होगा। मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्यावर्त का नाम लोगे तभी वह मिलेगा क्या तुम नहीं देखते हो कि आगामी दिवसों में आर्यावर्त के सब स्वतंत्र राष्ट्र एक के अनंतर दूसरे विदेशी विजेता से पद-दलित होंगे? और आर्यवर्त का सर्वनाश होगा।"[17] एकता की यही बात आचार्य चतुरसेन के 'राजसिंह' नाटक में उठाई गई है। "राजपूतों में संगठन नहीं, एकता नहीं, स्वार्थ और घमंड ने राजपूतों की वीरता और तलवार की धार को उन्हीं के लिए शाप बना दिया है।"[18] प्रसाद युगीन नाटककारों ने राष्ट्रीय एकता के साथ-साथ सांप्रदायिक एकता पर भी बल दिया है, क्योंकि राष्ट्र के समक्ष धर्म, जाति महत्व नहीं रखती है। राष्ट्र सबके लिए बराबर है तो उसकी रक्षा करने की ज़िम्मेदारी भी सबकी बराबर है। यही तथ्य प्रसाद तथा प्रसादकालीन नाटककारों ने समाज को समझाने का प्रयास किया।

प्रसादयुगीन नाटककारों की समकालीन परिस्थिति पर यदि अवलोकन करें तो ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज के जन-मानस में चेतना और ऊर्जा भरने का समय था। राजनैतिक धरातल पर गांधी का पदार्पण को चुका था, उन्होंने भारतीय मानस को अंग्रेजो के खिलाफ एकजुट करने का प्रयास किया जिसमें वह सफल भी रहे। गांधी जहाँ एक ओर अहिंसात्मक आंदोलन चला रहे थे वहीं साहित्यकार भी अपनी वाणी से जनमानस में नई चेतना और ऊर्जा का संचार करने में जुटा था। कविता अपने ढंग से यह कार्य कर रही थी जबकि नाट्य साहित्य के माध्यम से ऐतिहासिक-पौराणिक

तथ्यों का चयन कर समाज को आत्म-गौरव और नई सोच, नवीन चेतना का उन्मेष हो रहा था। जयशंकर प्रसाद ने अतीत के स्वर्णिम इतिहास को चुना तो प्रसाद युगीन अन्य नाटककारों ने भी पौराणिक एवं ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं के द्वारा अपनी रचनाओं को नई चेतना का वाहक बनाया, जिसकी वीरता, साहस और महान कार्यों से समाज भली-भांति परिचित था। वस्तुतः नाट्य साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना के वाहक बने ऐतिहासिक और पौराणिक पात्रों को नाटकों में पुनर्जीवित देखकर समाज भी इनसे प्रेरणा पाकर स्वाधीनता आंदोलन में कूद पड़ा। इस प्रकार सांस्कृतिक-राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति को प्रसादयुगीन विभिन्न नाटककारों ने अपने नाटकों में भली-भाँति स्थान दिया है।

संदर्भ ग्रंथ-

1. हिन्दी साहित्य कोश भाग(1)- पृ० 712- सं० धीरेन्द्र वर्मा
2. जनमेजय का नागयज्ञ- जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ-109
3. अजातशत्रु- जयशंकर प्रसाद, पृ० 63
4. चंद्रगुप्त-जयशंकर प्रसाद, पृ० 179
5. शिवा साधना- हरीकृष्ण प्रेमी, 23
6. वेन चरित- बदरी नाथ भट्ट- पृ० 33
7. अजातशत्रु- जय शंकर प्रसाद, पृ० 31
8. जनमेजय का नागयज्ञ- जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ-88
9. शिवाजी- राम कुमार वर्मा- पृ०
10. डॉ० राम कुमार वर्मा के नाटक साहित्य में चरित्र-सृष्टि- डॉ० लता राजोरिया- पृ०165
11. शिवा साधना- हरिकृष्ण प्रेमी- पृ०19
12. प्रताप प्रतिज्ञा- मिलिंद, पृ० 90
13. वही, पृ० 100
14. सगर विजय- उदय शंकर भट्ट- पृ० 110
15. रक्षाबंधन- हरिकृष्ण प्रेमी, पृ० 49
16. वही,पृ०81
17. चंद्रगुप्त-जयशंकर प्रसाद, पृ० 51
18. राज सिंह-चतुरसेन शास्त्री,पृ० 61-62